संवाद के सिलसिले में इस बार शिक्षक की हैसियत को लेकर दो टिप्पणियां दे रहे हैं । शिक्षक और समाज के रिश्तों और शिक्षकों की कार्यशैली को लेकर ये टिप्पणियां काफी तीखी हैं और कुछ अतिरंजित भी । निश्चय ही, इन टिप्पणियों की तरह विसंगतियों का सामान्यीकरण भी नहीं किया जा सकता । लेकिन हमें इस 'सामान्यीकरण' की तह को भी टटोलना चाहिए क्योंकि यह किसी अकादमिक मंशा से नहीं किया गया बल्कि स्वत: स्फूर्त आक्रोश के तहत किया गया है । जाहिर है कि ऐसी स्थिति विसंगति के व्यापक वास्तविकता बनते जाने के कारण पैदा हुई है । ये टिप्पणियां अतीत में शिक्षक की हैसियत को गौरव से देखती हैं । बहुतों को इससे एतराज होना स्वाभाविक है । लेकिन इसका एक निहितार्थ यह भी तो है कि शिक्षा के भविष्य का हमारा नक्शा कहीं बहुत धुंधला हो चला है । किसी विकल्प की उम्मीद हम इस संवाद से नहीं करते, यदि हम वास्तविकता को ठीक से पहचानने और उसे सकारात्मक दिशा देने के लिए चिंतित हैं तो यह भी छोटी बात नहीं है ।

शिक्षक के द्वन्द्व और शिक्षा

❑ हेतु भारद्वाज

शिक्षक पूरे शिक्षा-तंत्र की धुरी है, इसमें संदेह की गुंजाइश नहीं है । पर शिक्षक को किन द्वन्द्वों के बीच अपने दायित्व को अंजाम देना होता है, इस बारे में सामान्यत: हम कम ही विचार करते हैं । समाज शिक्षक से बहुत अपेक्षाएं करता है, वह उसके लिए भले ही राष्ट्र निर्माता न हो (जैसे की अक्सर नेता लोग कहते हैं) पर उसकी दृष्टि में बच्चों के भविष्य का निर्माता जरूर है । समाज के अचेतन मन में शिक्षक की तस्वीर एक ऐसे व्यक्ति के रूप में है जो जीवन-मूल्यों का रक्षक है तथा भावी पीढ़ी का निर्माता है । वस्तुत: समाज के अचेतन में शिक्षक की मूर्ति गुरूकुल के गुरू की है और वह शिक्षक से वैसे ही परिणामों की अपेक्षा करता है जैसे गुरूकुलों के गुरू दिया करते थे । यहां तक तो ठीक है । पर क्या आज का समाज शिक्षक के साथ वही सुलूक करता है जो गुरूकुल के समय का समाज अपने गुरू के साथ करता था ? शायद नहीं । शिक्षक के रूप में समाज उसे कोई छूट देने को तैयार नहीं है । इसलिए अगर आज के शिक्षक को यह कुंठा सताती है कि समाज उसे वाजिब सम्मान नहीं दे रहा है तो वह कहां गलत है ? शिक्षक और समाज के बीच यह न दिखायी पड़ने वाला द्वन्द्व दोनों के बीच एक दरार पैदा करता है । क्योंकि समाज यह कभी नहीं सोचता कि आज का शिक्षक आज के समाज का ही जीव है और वह भी समाज की उन सभी विसंगतियों तथा विद्रूपताओं का शिकार है जिनका शिकार एक आम नागरिक है । इस द्वन्द्व के कारण समाज और शिक्षक के बीच सही संवाद पैदा हो ही नहीं पाता ।

शिक्षक का कार्य स्कूलों में विद्यार्थियों को शिक्षा देना है पर क्या उसे केवल यही कार्य करने की स्वतंत्रता है ? और यहीं से शिक्षक और प्रशासन के बीच दूसरे प्रकार का द्वन्द्व आरम्भ हो जाता है । नगरपालिका, पंचायत से लेकर संसद तक के चुनावों में पूरे शिक्षक समुदाय को जोत दिया जाता है और उस दौरान प्रशासन का शिक्षक के प्रति व्यवहार कितना उपेक्षापूर्ण होता है, यह किसी से छिपा नहीं है । चुनाव की प्राथमिकता के सामने शिक्षा का पूरा तंत्र स्थगित कर दिया जाता है । ऐसे ही चाहे जनगणना का काम हो चाहे वीडियोग्राफी का, सबसे पहले उनके लिए शिक्षक की सेवाएं ली जाती हैं । अनेक प्रकार के सर्वेक्षणों का दायित्व भी शिक्षक को देना प्रशासन अपना धर्म समझता है। अब इन सारे गैरशैक्षणिक कार्यों से क्या शिक्षक की कार्यक्षमता पर प्रभाव नहीं पड़ता ? इसका अर्थ तो यही हुआ कि प्रशासन की नजर में शिक्षा प्राथमिकता की सूची में और बातों से कहीं पीछे है । शिक्षा के क्षेत्र में ही एक और कार्य चल रहा है - साक्षरता का। निश्चय ही भारत जैसे देश में यह बहुत आवश्यक है । किन्तु इस कार्य में भी शालाओं में कार्यरत शिक्षकों को ही झौंक दिया जाता है । यह तथ्य भी किसी से छिपा नहीं है कि साक्षरता कार्यक्रम के अपेक्षित परिणाम भी नहीं मिल पा रहे हैं, क्योंकि वहां जिन लोगों को लगाया जा रहा है वे अपना वक्त काटने की दृष्टि से वहां हैं। इतना ही नहीं कुछ शिक्षक तो ऐसे हैं जो अपने नियमित कार्य से बचने के लिए साक्षरता में घुसपैठ कर 'आखरजनरल' जैसे पद पर शोभित होकर आनंद लेते हैं। जब शिक्षकों का वह समय जो शालाओं तथा बच्चों के लिए तय है उसे अन्य कामों में व्यय किया जाएगा तो शिक्षकों से अपेक्षित परिणामों की अपेक्षा क्यों की जानी चाहिए ? क्या साक्षरता कार्यक्रम के नाम पर अपनी दुकान जमाए रखने वालों के दिमाग में यह बात नहीं

आती कि इस काम में सेवारत शिक्षकों का समय नहीं लिया जाना चाहिए। हमारे पास बेरोजगार शिक्षित युवकों की भीड़ है, ऐसे अनेक सेवानिवृत्त लोग हैं जो इस कार्य को चलाने की क्षमता रखते हैं । पर पता नहीं क्यों इस तरफ प्रशासन ध्यान ही नहीं देता । शिक्षा विभाग से अन्य विभागों में डैप्यूटेशन कराने की अजीब परम्परा है। जब प्रशासन यह समझता है कि कोई व्यक्ति शिक्षा विभाग के बजाए अन्य विभाग के लिए अधिक उपयोगी है तो उसे उसी विभाग में स्थायी नियुक्ति देकर उसके स्थान पर किसी अन्य बेरोजगार युवक को नियुक्ति क्यों नहीं दी जाती ? अगर प्रशासन यह समझता है कि साक्षरता का कार्य किसी शिक्षक विशेष के कारण नहीं चल सकता तो उसे वहीं स्थायी कर दीजिए और उसके स्थान पर नये व्यक्ति को रोजगार दीजिए । पर प्रशासन ने यह एक ऐसी गलत परम्परा डाल दी है जिसके द्वन्द्व में शिक्षक फंसा रहता है और अपना मुख्य दायित्व पूरा नहीं कर पाता है, क्योंकि वह जान रहा होता है कि वहां वह नितांत अस्थायी है ।

शिक्षक के द्वन्द्व का एक आयाम उसके शिक्षण के औजारों के साथ है । एक जलता हुआ दीपक ही दूसरे दीपक को जला सकता है, यह उक्ति शिक्षक के संदर्भ में ही कही गई थी । यह दुर्भाग्य की बात है कि सामान्य शिक्षक न अपने विषय के साथ न्याय करता है न अपने विद्यार्थियों के साथ । इसका कारण यह है कि शिक्षक होते ही वह पहला काम यह करता है कि पढ़ने-लिखने से वास्ता तोड़ लेता है । उसे इस बात की चिंता कभी नहीं सताती कि उसके विषय में क्या कुछ नया विकास हो रहा है तथा शिक्षा के क्षेत्र में किन नयी प्रविधियों का उन्मेष हो रहा है । वह अपने जीवन को एक ढर्रे में ढाल देता है - स्कूल जाना है, वहां कक्षाओं में जैसे तैसे विद्यार्थियों को पढ़ाना है, इधर-उधर की व्यर्थ की बातों में समय गुजार कर शाम को घर आ जाना है । न कुछ नया पढ़ना है और न कुछ नया करना है । विचार इस बात पर होना चाहिए कि शिक्षक के मन का जिज्ञासा भाव क्यों मर गया या उसे उसने क्यों मर जाने दिया? कहते हैं कि शिक्षक तो आजीवन विद्यार्थी रहता है, पर क्या आज का शिक्षक ऐसा है ? यदि नहीं तो उसके लिए यह चिंता का विषय क्यों नहीं है ? नये-नये पाठ्यक्रम लगाये जाते हैं पर क्या शिक्षक उनके अनुरूप अपने को तैयार करने की चेष्टा करते हैं ? ये शिक्षक की मूल चिंताए हैं जिनके द्वंद्व से वह उपराम क्यों है ?

इसी सवाल से जुड़ा एक सवाल और है - शिक्षक अपने आपको विद्यार्थियों के समक्ष किस रूप में प्रस्तुत कर रहा है ? यहां मैं उन गिने चुने भारी फीस लेने वाली तथाकथित उच्चवर्गीय संस्थाओं में काम करने वाले शिक्षकों की बात नहीं कर रहा हूँ । मेरी दृष्टि में तो उन शालाओं के सामान्य शिक्षक हैं जिनमें गरीब तथा मध्यम वर्ग के विद्यार्थी अध्ययन के लिए आते हैं । वहां भी विद्यार्थियों के लिए किसी न किसी प्रकार का गणवेश आवश्यक है । पर वहां के सामान्य शिक्षक की एक तस्वीर देखिए - एक ही रंग का कुर्ता-पाजामा, पैरों में हवाई चप्पलें, दाढ़ी के बाल बढ़े हुए और सिर के बाल बेतरतीब। जब विद्यार्थी का शाला में गणवेश में आना जरूरी है तो शिक्षक के लिए ऐसी कोई अनिवार्यता क्यों नहीं है ? क्यों नहीं शिक्षक कभी इस सवाल पर विचार करता कि उसे कम से कम खलासी से तो भिन्न दिखना ही चाहिए । वह क्या पहनता है वह इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना यह कि वह कैसे पहनता है । बाहरी दिखावे में भी तो उसे शिक्षक जैसा दिखना चाहिए । सादगी का अर्थ फूहड़ता कतई नहीं होता । क्या फूहड़ता से बचते हुए शालीन दिखने का प्रयास शिक्षक की चिंता नहीं होनी चाहिए ?

शिक्षक के द्वन्द्वों को लेकर अनेक सवाल हो सकते हैं जिनका प्रभाव शिक्षा के स्तर, विद्यार्थियों के आचरण तथा शालाओं के पर्यावरण पर पड़ता है । किन्तु जरूरत तो इस बात की है कि शिक्षक स्वयं इन द्वन्द्वों को समझने, इनसे जूझने तथा यथासंभव इनसे मुक्त होने का प्रयास करें । ◆